प्रवचन-३ गाथा-२ गुरुवार, ज्येष्ठ शुक्ल ७, दिनांक ११-०६-१९७०

अष्टपाहुड़, दर्शनपाहुड़ का अधिकार चलता है। दूसरी गाथा का भावार्थ चलता है, यहाँ से देखो, फिर से **ऐसे धर्म का मूल दर्शन कहा है,..** है ? ऊपर इस दूसरी गाथा के अर्थ का भावार्थ है।

इस गाथा में धर्म का मूल दर्शन, सम्यग्दर्शन अथवा दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित के आचरण की मूर्ति, वह दर्शन। **ऐसे धर्म का मूल दर्शन कहा है, इसलिए ऐसे धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचिसहित आचरण करना..** देखो! सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा आदि का धर्म। उसकी श्रद्धा, उसकी प्रतीति, उसकी रुचिसहित **आचरण करना..** लो, पहला तो यह आया।

मुमुक्षु : आचरण करना अर्थात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा / प्रतीति, रुचिसहित आचरण करना, ऐसा। समझ में आया ? वजन उन तीन का है। श्रद्धा, धर्म का मूल सम्यग्दर्शन अथवा दर्शन, उसकी श्रद्धा, उसकी प्रतीति, उसकी रुचिसहित आचरण करना। वही **दर्शन है,..** लो, इसका नाम दर्शन है। **यह धर्म की मूर्ति है,..** देखो! सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित का चारित्र, ऐसा जो आत्मा मूल, वह धर्म की मूर्ति है। अन्तर आत्मा का सम्यग्दर्शन अनुभव, उसका ज्ञान, उसका आचरण—ऐसा जो मुनि, उसे यहाँ दर्शन अर्थात् धर्म की मूर्ति कहकर उसे दर्शन कहा है। समझ में आया ?

इसी को मत(दर्शन) कहते हैं और यही धर्म का मूल है.. इसे मत भी कहा जाता है। जैन का मत अर्थात् वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी सम्यग्ज्ञान, वीतरागी आचरण इस सहित की नग्न मुद्रा को जैन का मत कहने में आता है। वीतराग का मत अर्थात् जैनदर्शन। समझ में आया ? **तथा ऐसे धर्म की प्रथम श्रद्धा, प्रतीति, रुचि न हो..** देखो! ऐसा आत्मा भगवान ने कहा हुआ ऐसा आत्मा, उसकी रुचि, श्रद्धा और प्रतीति न हो **तो धर्म का आचरण भी नहीं होता।** बराबर है ? ऐसा जो धर्म, वीतराग जैनदर्शन; जैनदर्शन, वह अन्तर आत्मा की सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रवाली जैनमूर्ति, जैन

का स्वरूप-मुनि। वह जैनदर्शन, वह जैन का मत। ऐसे आत्मा की, ऐसे धर्म की जिसे अभी श्रद्धा, रुचि, प्रतीति नहीं तो उसके आचरण नहीं हो सकते। ऐसा है या नहीं? सेठी! कहाँ है?....

ऐसे धर्म की प्रथम श्रद्धा, प्रतीति, रुचि न हो तो धर्म का आचरण भी नहीं होता। जैसे वृक्ष के मूल बिना.. वृक्ष के मूल बिना। **स्कंधादिक नहीं होते। इसप्रकार दर्शन को धर्म का मूल कहना युक्त है।** दर्शन को मूल का धर्म कहना बराबर है। जो मुनि है, जैन मुनि, जिसे आत्मा का अनुभव है। सम्यग्दर्शन है, ज्ञान, आचरण-चारित्र है, उसे अन्दर व्यवहार का विकल्प (होवे) और बाह्य में नग्नदशा। यह पूरा जैनदर्शन का निश्चय और व्यवहाररूप है। ऐसे स्वरूप की जिसे श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं है, उसे सच्चा आचरण नहीं हो सकता। **ऐसे दर्शन का सिद्धान्तों में जैसा वर्णन है, तदनुसार कुछ लिखते हैं।** शास्त्र में इस दर्शन का स्वरूप है, वह कुछ यहाँ कहने में आता है। आगे शास्त्रकार स्वयं कहेंगे। यहाँ कहते हैं, मैं थोड़ा-सा कहूँगा। लो!

वहाँ अंतरंग सम्यग्दर्शन तो जीव का भाव है,... यहाँ से शुरु किया। यह अन्तरंग सम्यग्दर्शन है अर्थात् शुद्ध आत्मा अनन्त गुण का पुंज ऐसा चेतन, उसके सन्मुख की श्रद्धा सम्यग्दर्शन, वह जीव का भाव है, जीव की पर्याय है। सम्यग्दर्शन, अन्तरंग सम्यग्दर्शन वह जीव की पर्याय है, जीव का भाव है। **वह निश्चय द्वारा उपाधिरहित...** देखो! सम्यग्दर्शन सत्य निश्चयदृष्टि से देखो तो उसमें राग और विकल्प की उपाधि नहीं है। ऐसा निरुपाधि सम्यग्दर्शन का स्वरूप है। कहो, समझ में आया?

निश्चय द्वारा उपाधिरहित शुद्ध जीव का साक्षात् अनुभव होना... लो, यह सम्यग्दर्शन, उसकी व्याख्या यह है। पहले उपाधि से रहित, यह नास्ति से कहा। विकल्प आदि, मन आदि, राग की उपाधि, वह सम्यग्दर्शन में है ही नहीं। तब है क्या? शुद्ध जीव परम वीतरागस्वभाव की मूर्ति ऐसा जीव, उसका **साक्षात् अनुभव होना...** प्रत्यक्ष ज्ञान और मति-श्रुतज्ञान में वेदन आना। सम्यक् मति-श्रुतज्ञानसहित का अन्दर वेदन आना, अनुभव (होना)। **ऐसा एक प्रकार है।** लो! दर्शन का यह एक प्रकार है, ऐसा कहते हैं। दर्शन के प्रकार में तो दर्शन, ज्ञान, चारित्रसहित आचरण सब लेना है, परन्तु यह एक दर्शन का पहला यह प्रकार है। बराबर है? दर्शन का यह एक प्रकार है। एक ही प्रकार है, ऐसा

कहा है न ? दर्शन है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रसहित के आचरणवाला जो आत्मा, उसे जैनदर्शन और जैनमत कहने में आता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। दर्शन का एक प्रकार यह, ऐसा। दर्शन का एक प्रकार यह। दर्शन अर्थात् कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आचरणसहित जिनमुनि की वीतरागीदशा, वीतरागीदर्शन वह जैनदर्शन। उसमें उसका सम्यग्दर्शन एक प्रकार है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन का दूसरा प्रकार है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? पहले तो कहा है न ऊपर ? **ऐसे धर्म का मूल दर्शन कहा है, इसलिए ऐसे धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचिसहित आचरण करना ही दर्शन है,..** ऐसा आया था न ? ऊपर आया था। **धर्म का मूल दर्शन कहा है,..** अब दर्शन अर्थात् अकेला समकित, ऐसा नहीं है। **ऐसे धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचिसहित आचरण करना ही दर्शन है,..** उस दर्शन के प्रकार में यह सम्यग्दर्शन एक प्रकार है।

मुमुक्षु : धर्म का मूल दर्शन लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पूरा लिया है यहाँ। दर्शन, ज्ञान और चारित्र सिद्ध करना है न ? वह सब धर्म पूरा। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रसहित है, वह पूरा धर्म का मूल है। वस्तु का स्वरूप का मूल है। यहाँ दर्शन ऐसा लिया है। उसमें सम्यग्दर्शन वह मूल है, वह वापस अलग बात है। समझ में आया ? यहाँ तो दर्शन उसे ही कहा न ? आगे कहेंगे और बहुत जगह (आता है)। सिद्धान्तरूप से सम्यग्दर्शन कहना है, परन्तु सम्यग्दर्शन की प्रतीति में ऐसा दर्शन होता है, ऐसा कहते हैं। भाई! सम्यग्दर्शन, वह धर्म का मूल, परन्तु वह सम्यग्दर्शन (वह) किस दर्शन की प्रतीति ? ऐसे दर्शन की प्रतीति। सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्रसहित का जो जैनदर्शन है, उसकी प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन है। उसका नाम दर्शन, ऐसा। ऐसे दर्शन की प्रतीति-श्रद्धा, वह एक सम्यग्दर्शन। यह दर्शन का एक प्रकार, ऐसा। समझ में आया ? बोधपाहुड़ में आया है न ?

अंतरंग सम्यग्दर्शन तो जीव का भाव है, वह निश्चय द्वारा उपाधिरहित शुद्ध जीव का साक्षात् अनुभव होना ऐसा एक प्रकार है। दर्शन में का एक प्रकार यह

है। समझ में आया? ज्ञान, चारित्रसहित का पूरा जैनदर्शन है न! पूरा जैन वीतरागस्वरूप ही आत्मा है और वीतरागस्वरूप जैनदर्शन अर्थात् वास्तविक वीतरागस्वरूप, उसकी प्रतीति, ज्ञान और आचरण (होना), उसका नाम जैनदर्शन अथवा जैनमत है। समझ में आया? उसकी प्रतीति अन्दर में आना, सम्यग्दर्शन, उसका नाम सम्यग्दर्शन निरुपाधि तत्त्व। अर्थात् क्या कहा?

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पूरी वस्तु, वह दर्शन। अब पूरा दर्शन और उसकी जो प्रतीति। उसकी प्रतीति में स्वभाव की प्रतीति आयी और संवर, निर्जरा कैसे होते हैं, उसकी प्रतीति आयी। चारित्र कैसा (होता है), उसकी प्रतीति आयी और जैन का ज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान कैसा होता है, उसकी प्रतीति आयी। दर्शन की प्रतीति, ज्ञान की प्रतीति और उसका आचरण-चारित्र की प्रतीति। भाई! आहाहा! यहाँ लिया है न! परन्तु उस प्रतीति में किसके आश्रय से सब प्रतीति आयी? उसे यह जैनमत कहा है न? ऊपर देखो न! **इसी को मत(दर्शन) कहते हैं..** मत कहो, जैनदर्शन कहो, परन्तु वह जैनदर्शन अर्थात् यहाँ सम्यग्दर्शन, ऐसा जो दर्शन है, उसकी जो श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन है। उसका मूल है। समझ में आया? यह धर्म का मूल है। चारित्रधर्म - पूरा धर्म वहाँ खड़ा होता है न! मोक्षमार्ग चौथे में तो उपचार से है। उपचार से मोक्षमार्ग है, व्यवहार से। पूरा जैनदर्शन अर्थात् जैनपना प्रगट हुआ जहाँ, वीतराग ऐसा स्वभाव ही उसका है, ऐसी प्रतीति, ज्ञान, वीतरागता पर्याय में प्रगटी है, उसे जैनदर्शन कहने में आता है।

मुमुक्षु : उन्हीं की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो मुनि की ही बात मुख्य है। मुनि को ही दर्शन कहा है। मुनि का दर्शन, वह जैनदर्शन। आहाहा! समझ में आया? यह तो अन्य दर्शनों में, जैन में सब भाग पड़े थे न? उन्हें भिन्न करने को यह बात की है। समझ में आया? वस्त्रसहित के वेषवाले वे श्रद्धा-ज्ञानवाले हैं और वे जैनदर्शन हैं, ऐसा नहीं है। ऐसा सिद्ध करने के लिए यह बात ली है। समझ में आया? वस्त्रवाले और वस्त्रसहित साधुपना माननेवाले और उनके लिंग आदि, वह जैनदर्शन है ही नहीं। जैनदर्शन वस्तु का स्वभाव है और उस स्वभाव का भान, ज्ञान और वर्तन-आचरण हुआ, उसे यहाँ दर्शन कहकर उसे जैन का मत कहने में आया है। उसका नाम जैनदर्शन। ऐई... देवानुप्रिया! देखो! यह पण्डितजी प्रश्न

करते हैं। यह चलता है दर्शन का अधिकार। समकित का मूल, फिर यह... कहाँ से निकाला ? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा मत.. ऊपर आया न, इसलिए फिर से पढ़ा। यह कल पढ़ा गया था। **ऐसे धर्म का मूल दर्शन कहा है, इसलिए ऐसे धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचिसहित आचरण करना ही दर्शन है,..** है या नहीं ऊपर ? **यह धर्म की मूर्ति है, इसी को मत (दर्शन) कहते हैं और यही धर्म का मूल है..**

मुमुक्षु : मत इससे अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मत, यही गुण है, यही वस्तु है। गुणीपना यही मूल है, यही धर्म है, यही जैनदर्शन है, दर्शन का मूल यह है। पण्डितजी तर्क करे, उसमें थोड़ी गहराई होती है। कहो, समझ में आया ? दर्शन की व्याख्या आगे बहुत आयेगी। बोधपाहुड़ में दर्शन आता है या नहीं ? .... दर्शन का स्वरूप, लो, यह आया। बोधपाहुड़ की १४वीं गाथा। देखो !

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।
णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं।।१४।।

अब तो इसमें सरल होता है।

मुमुक्षु : अलग प्रकार आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। अलग कुछ नहीं आते। यह सब अपेक्षाएँ। अन्दर आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन हो, उस सम्यग्दर्शन में ऐसी सब प्रतीति उसमें आ जाती है। सब—ज्ञान की, चारित्र की। ऐसा चारित्र होता है, ऐसा ज्ञान होता है, ऐसी वीतरागता होती है, यह सब सम्यग्दर्शन में प्रतीति (आ जाती है) और ये तीनों इकट्ठे होकर जैनदर्शन कहने में आता है।

मुमुक्षु : उसकी प्रतीति....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी प्रतीति। जैनदर्शन का एक भाग हुआ। है न, देखो न ! यहाँ तो दर्शन की व्याख्या ही यह की है। देखो ! बोधपाहुड़ की १४वीं गाथा।

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजमं सुधम्मं च।
णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं।।१४।।

देखो! *अर्थ* – **जो मोक्षमार्ग को दिखाता है, वह 'दर्शन' है। मोक्षमार्ग कैसा है ? सम्यक्त्व अर्थात् तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण सम्यक्त्वस्वरूप है, संयम अर्थात् चारित्र–पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति – ऐसे तेरह प्रकार चारित्ररूप है, सुधर्म अर्थात् उत्तमक्षमादिक दशलक्षण धर्मरूप है, निर्ग्रन्थरूप है, बाह्य–अभ्यंतर परिग्रह रहित है, ज्ञानमयी है, जीव अजीवादि पदार्थों को जाननेवाला है। यहाँ 'निर्ग्रन्थ' और 'ज्ञानमयी' ये दो विशेषण दर्शन के भी होते हैं, क्योंकि दर्शन है, सो बाह्य तो इसकी मूर्ति निर्ग्रन्थ है और अंतरंग ज्ञानमयी है। इसप्रकार मुनि के रूप को जिनमार्ग में 'दर्शन' कहा है तथा इसप्रकार के रूप के श्रद्धानरूप सम्यक्त्व स्वरूप को 'दर्शन' कहते हैं।** देखो! ऐसे का श्रद्धान, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? यह तो बहुत समय से पढ़ा नहीं था न? चेतनजी!

यहाँ तो आत्मा... जैनदर्शन, वह सम्प्रदाय नहीं—ऐसा सिद्ध करना है। वह वस्तु का स्वरूप है। आत्मा अत्यन्त वीतरागस्वरूप है। उसका द्रव्य ही वीतरागस्वरूप है। अर्थात् जिनस्वरूप है। ऐसे वीतरागस्वरूप का सम्यग्दर्शन–प्रतीति, ऐसे वीतरागस्वरूप का ज्ञान, ऐसे वीतरागस्वरूप का आचरण–चारित्र वीतरागी, उसकी मूर्ति नग्न दिगम्बर बाहर में होती है। निमित्तपना उसे नग्न दिगम्बर होता है। उपादानपना ऐसा सम्यग्दर्शन–ज्ञान, उसे जैनदर्शन और जैनदर्शन की मूर्ति कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा आत्मा, उसका दर्शन–ज्ञान और चारित्र ऐसा जो मार्ग दिखाता है कि मार्ग ऐसा है। उस मार्ग की अन्तर में सम्यक् प्रतीति। उसमें आत्मा की प्रतीति आ गयी, उसका ज्ञान जैनदर्शन में कैसा होता है, उसकी प्रतीति आ गयी, जैनदर्शन का चारित्र जो दर्शन है, वह चारित्र, उसकी प्रतीति आ गयी और ऐसे जैनदर्शन के चारित्र की प्रतीति के काल में अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प की ही मर्यादा होती है, उसकी प्रतीति आ गयी। आचरण की। संवर, निर्जरा की आ गयी, आस्रव की आ गयी। समझ में आया? और उसे निमित्तरूप से संयोगमात्र नग्न शरीर–अजीव का ही होता है, ऐसे अजीव की भी उसमें प्रतीति आ गयी।

यह तो आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य अर्थात्! आहाहा! हैं? आहाहा! गजब इनकी शैली! इनकी जगत के समक्ष रखने की पद्धति अलौकिक है! वृन्दावनदास ने कहा—'न हुए, न होंगे, न होसि' यहाँ तक कह दिया। ऐसे, इस प्रकार के नहीं होंगे, ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

अब पहली बात तो यह ली है कि **वहाँ..** जैनदर्शन के स्वरूप में। सम्यग्दर्शन, संयम, ज्ञान, चारित्र की मूर्ति और बाह्य में नग्नदशा, ऐसा जो जैनदर्शन अर्थात् दर्शन की मूर्ति, ऐसे दर्शन की व्याख्या अब मैं कुछ करूँगा। आचार्य तो करेंगे ही परन्तु मैं थोड़े-सी करूँगा। उसमें **अंतरंग सम्यग्दर्शन तो जीव का भाव है,..** वह भाव कैसा है? **निश्चय द्वारा उपाधिरहित..** जिसमें विकल्प, राग और मन का संग जिसमें नहीं है। ऐसा चेतनद्रव्य, उसकी अन्दर प्रतीति। समझ में आया? उस प्रतीति में जैनदर्शन की प्रतीति उसमें आ गयी। वीतरागभाव का सम्यक्, वीतराग का ज्ञान और वीतरागी चारित्र, यह उसमें आ गया। समझ में आया? अभी चर्चा आयी थी। ऐसा कहे, चारित्र होवे तो सम्यग्दर्शन होगा। ऐसा नहीं होता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान न हो, उसे चारित्र कहेंगे, उसे नहीं होता।

मुमुक्षु : मुनि को नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। स्वरूपाचरण ही होता है। तब कहे, चारित्र की तो बात भी नहीं परन्तु चारित्र के ज्ञान की बात भी नहीं, उसने लिखा है। ऐसा नहीं। ज्ञान होता है।....चारित्र की तो गन्ध भी वहाँ नहीं परन्तु चारित्र के ज्ञान की बात भी उसमें नहीं ली। ऐसा नहीं है। समझ में आया?

चारित्र अर्थात् संवर का स्वरूप। उसकी श्रद्धा सम्यग्दर्शन में आ जाती है। उसका ज्ञान उसमें आ जाता है। ज्ञान और श्रद्धा न आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह है। भाई ने लिखा है, जैन-संदेश में है। बनावटी रह गया। कल बात की थी। वस्तुस्थिति जैसी है, वैसी उसे जानना चाहिए। घर का कुछ नहीं डालना चाहिए। समझ में आया? सिद्ध में चारित्र नहीं, ऐसा कहते हैं सिद्ध में चारित्र नहीं। स्वरूपाचरणचारित्र पूर्ण सिद्ध में है। उसके सामने चर्चा रतनचन्दजी ने (की है) रतनचन्दजी कहे, है और यह कहे, नहीं। यह .... विवाद। भाई! तत्त्व क्या है?

भगवान आत्मा, वस्तु ऐसा आत्मा, उसमें जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र लिये न? उन तीन की पर्याय का पिण्ड यहाँ अन्दर समकित, श्रद्धा की पर्याय का पिण्ड तो अन्दर श्रद्धा है। ज्ञानपर्याय का पिण्ड तो अन्दर ज्ञान है। उस चारित्र की पर्याय का पिण्ड तो अन्दर चारित्र गुण है। समझ में आया? जिसने सम्यग्दर्शन की प्रतीति आत्मा की करी, उसकी प्रतीति में जैनदर्शन का पूरा स्वरूप प्रतीति में आ जाता है। (भले) चारित्र नहीं होता परन्तु चारित्र कैसा होता है - ऐसी उसमें प्रतीति सम्यग्दर्शन में आ जाती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : हमें सब आ जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : आचरण नहीं। आचरण तो चारित्र है। ज्ञान आ जाता है। चारित्र, जो सम्यक्चारित्र की यहाँ बात नहीं। चारित्र, सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित का चारित्र। वीतरागता दूसरी चीज़! ऐसा सब जैनदर्शन की प्रतीति में (आ जाता है)। इसलिए दर्शन की प्रतीति में यह आ जाता है। आहाहा! जैनदर्शन का मत ही यह है कि इन तीन पूर्वक पूरा। दर्शन-ज्ञान-चारित्र। क्योंकि वस्तु स्वयं ऐसी है। वस्तु स्वयं ऐसी है, वीतरागस्वरूपी। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र जो गुण हैं, उनमें यह सब इसी प्रकार की चारित्र की पर्याय का पिण्ड है। इस प्रकार के सम्यग्ज्ञान की पर्याय का पिण्ड है। इस प्रकार की श्रद्धा-पर्याय का पिण्ड है। पूरे द्रव्य की इस प्रकार से जब प्रतीति हुई, तब उसमें जैनदर्शन पूरा कैसा है, यह सब प्रतीति उसमें आ जाती है। क्या कहा? भाई! समझ में आया? अन्दर दर्शन, ज्ञान, चारित्र में वह सब है। पूरा परमात्मा होने का जो उपाय है, मोक्षमार्ग '**मोक्खमग्गं**' आया न? '**मोक्खमग्गं**' यह मोक्षमार्ग जो है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ऐसी अनन्त पर्यायें, अनन्त पर्यायें गुण में पड़ी हैं। उसके गुण की, द्रव्य की जहाँ प्रतीति हुई तो ये सब दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जैनमार्ग की प्रतीति उसमें आ जाती है। उसका चारित्र नहीं आता। सम्यग्दर्शन में उसका चारित्र नहीं परन्तु चारित्र कैसा (होता है), उसकी प्रतीति आ जाती है। उसका ज्ञान जो पूर्ण ज्ञान है, वह इसमें नहीं आता, परन्तु उसका ज्ञान का जो ज्ञान, ऐसा ज्ञान ऐसा होता है, उसका ज्ञान इसमें आ जाता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा एक प्रकार है। ऐसा आया न? इसलिए भाई ने प्रश्न उठाया न! सम्यग्दर्शन का दूसरा प्रकार है? ऐसा नहीं। दर्शन में का एक यह प्रकार। दर्शन है, वह तो दर्शन, ज्ञान,

चारित्र की पूरी मूर्ति है, उसे पूरा मोक्षमार्ग, दर्शन कहने में आता है। समझ में आया? गजब! यह अष्टपाहुड़ चला। पढ़े तो सही। ऐसा स्पष्टीकरण पहले (आया) नहीं था। यह मार्ग ऐसा है। बापू! मूल मार्ग ही वहाँ से शुरु होता है। पूरा। वस्तु का, हों! वस्तु का। वस्तु की पूर्ण प्रतीति, वस्तु का ज्ञान और वस्तु का आचरण-चारित्र, तीन होकर मोक्षमार्ग हैं। मोक्षमार्ग, वह दर्शन है। उसकी मूर्ति विकल्पवाली, व्यवहार नग्न, वह जैनदर्शन। व्यवहार में निश्चय का आरोप है उस पर। समझ में आया? जिसे ऐसी प्रतीति नहीं, और जिसे वस्त्रसहित के संयोगवाले अजीव का भाव और यहाँ उसे रखने का भाव (होवे), उसे तो जैनदर्शन की एक भी प्रतीति की खबर नहीं है, ऐसा कहते हैं।

जिसे ऐसा आत्मा एक समय में पूर्ण नाथ, पूर्ण अनन्त ऐसे तो गुण अभेद... अभेद... अभेद ऐसी चीज़। उसकी अन्तर में उसका आश्रय होकर प्रतीति हुई, उस प्रतीति में पूरा जैनदर्शन का क्या रूप है अर्थात् आत्मदर्शन का क्या रूप है अर्थात् मोक्षमार्ग का क्या स्वरूप है, वह प्रतीति उसमें आ जाती है। पूरा मोक्षमार्ग प्रगट नहीं होता परन्तु मोक्षमार्ग का क्या स्वरूप है, उसकी प्रतीति उसमें आ जाती है। समझ में आया? उस समय इन्होंने पाहुड़ शुरु किया है। कहो, समझ में आया?

निश्चय द्वारा उपाधिरहित.. वस्तु स्वयं ही द्रव्यस्वभाव उपाधि से रहित है और उस द्रव्यस्वभाव की जो पूर्ण प्रतीति-सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसका चारित्र, वह भी उसके पूर्ण... पूर्ण ऐसा द्रव्य, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की योग्यता का वह ठिकाना, उसके अन्दर योग्यतावाला विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण और बाह्य नग्नदशा, यह जैनदर्शन का अभिप्राय और दर्शन, निश्चय और व्यवहार यह है। पण्डितजी! आहाहा! सेठी!

ऐसा अनुभव... अब सम्यग्दर्शन की व्याख्या करते हैं। मूल तो सम्यग्दर्शन इसमें मूल है परन्तु दर्शन यह; उसका मूल सम्यग्दर्शन। यह दर्शन है धर्म का मूल। मूल वस्तु, परन्तु उसका मूल वापस सम्यग्दर्शन है। पहले सम्यग्दर्शन होता है न। यहाँ दर्शन तो पूरा तीन होकर है। पूरा जैनदर्शन। उसका मूल। मूल तो यह तीन होकर है, परन्तु उसमें पहले यह-सम्यग्दर्शन प्रगटता है।

ऐसा अनुभव अनादिकाल से मिथ्यादर्शन नामक कर्म के उदय से अन्यथा हो रहा है। यहाँ गड़बड़ करते हैं। भगवान आत्मा अपने स्वसन्मुख का सम्यक् और

अनुभव करता नहीं, तब उसकी दशा में मिथ्यात्वभाव होता है और उस मिथ्यात्वभाव में मिथ्यात्वकर्म का निमित्तपना होता है, इतना सिद्ध करना है। वह अनुभव अनादि काल से **मिथ्यादर्शन नामक कर्म के उदय से अन्यथा हो रहा है।** राग का अनुभव है। वीतरागस्वभाव का अनुभव नहीं। अनादि से राग का अनुभव है, वह मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान है। समझ में आया?

मिथ्यादर्शन नामक कर्म का उदय तो निमित्त है। उसमें यहाँ परिणति अन्यथा हो गयी है। निमित्त के वश होकर। स्वभाव के वश होकर जो दर्शन-अनुभव होना चाहिए, स्वभाव के वश होकर अनुभव होना चाहिए, वह निमित्त के वश से अनुभव की विपरीत पर्याय—राग के अनुभव की हो गयी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा वीतरागस्वरूप है,....

इसमें पंखा-बंखा, हवा नहीं खायी जाती। पुस्तक से हवा नहीं खायी जाती। यह सुनने जाए, तब गर्मी का ख्याल भी नहीं रहता कि गर्मी है या नहीं? समझ में आया? पुस्तक से हवा नहीं खायी जाती। पुस्तक सुनने की चीज़ है। इससे हवा नहीं खायी जाती, असातना होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रतिकूलता सुहाती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिकूलता सुहाती नहीं तो मिथ्यात्व का सेवन क्यों (चलता है)? उसके सेवन में तो बड़ी प्रतिकूलता आयेगी.... भाई! विपरीत श्रद्धा के फल में तो अनन्त प्रतिकूलता (आयेगी), निगोद आदि की दशा (आयेगी)। आहाहा! थोड़ी प्रतिकूलता सुहाती नहीं और बहुत प्रतिकूलता के कारण का सेवन करता है, इसकी तुझे कुछ खबर नहीं पड़ती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! कहाँ निगोद का अवतार और कहाँ रौरौव नरक का नारकी का अवतार। बापू! यह बात रूप से इसे नहीं लेना चाहिए, भावरूप से ख्याल में (लेना चाहिए)। ओहोहो! भगवान आत्मा कहाँ कहाँ था? अपने स्वरूप के अनुभव बिना, कहते हैं कि यह राग और आकुलता के अनुभव में था। मिथ्या अनुभव अर्थात् अज्ञान का अनुभव था। यह स्वयं ने किया है, कर्म का तो उसमें निमित्त है। समझ में आया?

निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव। आस्थारूप से ख्याल में ले तो इसे ऐसा आ

जाए। यह बात नहीं, वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? एक शरीर में अनन्त जीव। श्वास एक, आयुष्य एक, आहार एक। कहते हैं कि आत्मा के अनुभव बिना मिथ्यात्वकर्म के निमित्त के वश हुआ अनुभव से विपरीत पर्याय को प्राप्त है। आहाहा! समझ में आया?

अनादिकाल से मिथ्यादर्शन नामक कर्म के उदय से अन्यथा हो रहा है। सादि मिथ्यादृष्टि के उस मिथ्यात्व की तीन प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं.. सादि मिथ्यादृष्टि के उस मिथ्यात्व की तीन प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं.. क्या कहते हैं? एक मिथ्यात्व प्रकृति के तीन टुकड़े हो जाते है। सादि मिथ्यादृष्टि को। आत्मा का ज्ञान और अनुभव होने के बाद वापस गिरकर राग का अनुभव करता है, तब उस मिथ्यात्व प्रकृति के उसे तीन टुकड़े होते हैं। समझ में आया? **सादि मिथ्यादृष्टि के उस मिथ्यात्व की तीन प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं..** अनादि (मिथ्यादृष्टि) को एक ही होती है। मिथ्यात्व। अनादि जीव जो है अनुभवरहित अनादि का, उसे तो अकेली मिथ्यात्व प्रकृति ही है और मिथ्यात्वभाव है परन्तु जो सादि मिथ्यादृष्टि है, अनुभव से गिर जाता है, पड़ गया है। आ गया है, वह पड़ गया है, उसे तीन प्रकृति सत्ता में होती है।

मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति.. तीन **उनकी सहकारिणी अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ के भेद से..** लो, ठीक। उनकी सहकारिणी। इन तीन प्रकृतियों के साथ में क्रोध, मान, माया (लोभ) अनन्तानुबन्धी के, हों! महासंसार का कारण। स्वरूप का अनाचरण, ऐसा अनन्तानुबन्धी का भाव, उसके भेद से **चार कषाय नामक प्रकृतियाँ हैं। इसप्रकार यह सात प्रकृतियाँ ही सम्यग्दर्शन का घात करनेवाली हैं;..** लो, यहाँ तो सात कहते हैं। अर्थात् ....कहे, देखो! सात में चार है, तीन है, वे दर्शन की प्रकृति है और चार हैं, वे चारित्र मोह की प्रकृति है। अनन्तानुबन्धी चार चारित्र मोह की प्रकृति है। उनका अभाव होने पर चारित्र का अंश न प्रगटे तो चारित्र की अनन्तानुबन्धी गयी किस प्रकार? स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है। आहाहा! इसका बड़ा विवाद। नहीं, ऐसा माने वे आचार्य को मानते नहीं, वे मिथ्यादृष्टि हैं। यहाँ का लिखे, उसके सामने, हों! उसके सामने। हमारे सामने कुछ नहीं। यह तो मक्खनलालजी के सामने। मक्खनलालजी कहे, होता है। तब वे कहें, नहीं। शास्त्र का, आचार्य का कहीं आधार नहीं है। आचार्य कहते हैं, यह प्रकृति दर्शन की है। तुम कहते हो कि चारित्र की

है। ....तुम होते नहीं, जाओ। अरे! भगवान! इतना सब जोर करते हैं। बहुत जोरदार भ्रमणा, भाई!

भगवान आत्मा अनुभव में तो सम्यग्दर्शन की पर्याय और चारित्र में स्वरूप के आचरण की पर्याय और आनन्द की सब अनुभव में शामिल होती है। उस अनुभव से विरुद्ध में अनादि का मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चार हैं। और गिरे हुए को तीन और चार सात होती है। समझ में आया?

इसलिए इन सातों का उपशम होने से पहले तो इस जीव के उपशमसम्यक्त्व होता है। वह जीव कहते हैं। इन सात का सादिवाले को उपशम होता है। अनादिवाले को मिथ्यात्व का उपशम (होता है)। **इस जीव के उपशमसम्यक्त्व होता है।** पहला उपशम होता है न अनादि का? पहला क्षायिक नहीं होता।

इन प्रकृतियों का उपशम होने का बाह्य कारण सामान्यतः.. अब बाह्य कारण रखा। अन्तरंग कारण तो पुरुषार्थ की जागृति है और निमित्तकारण कर्म। बाह्य कारण यह। निमित्तकारण कर्म का अभाव होना। पुरुषार्थ की जागृति, वह अन्दर शुद्ध उपादान का कारण। अन्तरंग कारण कर्म की प्रकृति का अभाव। बाह्य कारण ऐसे निमित्त। उनके कारण सम्यक्त्व होता है, ऐसा सिद्ध करना है।

मुमुक्षु : बाह्य कारण....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न! अब आता है, आता है। देखो! चार बोल लेंगे। देखो!

बाह्य कारण सामान्यतः द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव हैं, उनमें प्रधान द्रव्य में तो साक्षात् तीर्थंकर के देखनादि.. द्रव्य में वापस मुख्य प्रधान यह। दूसरा द्रव्य तो निमित्त में हो... **द्रव्य में तो साक्षात् तीर्थंकर के देखना..** अन्तर में तो पुरुषार्थ स्वभावसन्मुख करे, तब अन्तर की प्रकृति का अभाव होता है और बाह्य निमित्त ऐसे होते हैं। उनके कारण होता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। समझ में आया?

क्षेत्र में समवसरणादिक प्रधान हैं,.. समवसरण, गणधर आदि के स्थान, तीर्थंकरों के... स्थान, वे सब क्षेत्र निमित्त हैं। जीव स्वभाव-सन्मुख होकर (पुरुषार्थ) करे,

उस काल में यह क्षेत्र था, उससे यह कुछ अलग है, इसलिए उसे सम्यक्त्व का बाह्य कारण कहने में आता है। समझ में आया? **काल में अर्द्धपुद्गलपरावर्तन संसार भ्रमण..** लो, इसका भी उन्हें विवाद है। खबर है? क्या? इतने अधिक संसार को मानते नहीं। जब-जब पुरुषार्थ करे तब... पूरे पुद्गल में से आधा रहे तब... अनादि संसार में अर्द्धपुद्गल (परावर्तन) रहे, तब समकित हो सकता है, ऐसा नहीं। ....सम्यग्दर्शन पाने की योग्यता अर्द्धपुद्गल संसार भगवान ने यदि देखा हो, तब होता है। उसकी स्थिति इतनी हो तब। तब उसे इतना काल रहता है। होता है स्वभाव के आश्रय से, परन्तु उसे अर्द्धपुद्गल (परावर्तन) संसार (रहे), तब वह प्राप्त करता है। ऐसा वह निमित्त है। उसे निमित्त कहने में आता है। उपादान तो अपना है। बाह्य कारण कहा न? उसे बाह्य कारण कहा। अर्द्धपुद्गलपरावर्तन हुआ, यह बाह्य कारण है। यह स्वभाव (सन्मुख का पुरुषार्थ) करे, तब बाह्य कारण को निमित्त कहने में आता है, ऐसा है। उसे कहने जाए कि यह अर्द्धपुद्गल है या नहीं? स्वभावसन्मुख होवे और सम्यग्दर्शन प्राप्त करे तो उसे अर्द्धपुद्गल (परावर्तन) संसार बाकी रहा हो, ऐसा इसे ज्ञान में आवे। समझ में आया? वहाँ इसे इतना रहा, ऐसा। इतना अर्थात् अब ऐसा नहीं, परन्तु अर्द्धपुद्गल इसे था इतना। अब तो एक या दो भव में ही इसका कल्याण हो जाएगा। समझ में आया? और कोई गिरे तो अर्द्धपुद्गल (परावर्तन) रहे, यह ज्ञान कराया।

तथा भाव में अधःप्रवृत्त करण आदिक हैं। लो। यह सम्यग्दर्शन में निमित्त है, इतना। उपादानकारण तो अन्दर अपने आत्मस्वभाव सन्मुख के परिणाम हैं। आत्मस्वभाव सन्मुख परिणाम, वही यथार्थ कारण है। समझ में आया? ऐसा होवे उसे परिणाम... पाने के समय तो उसका अभाव करना है।

(सम्यक्त्व के बाह्य कारण) विशेषरूप से तो अनेक हैं। उसे बहुत प्रकार से निमित्तपना आता है। सम्यग्दर्शन होने के काल में... **उनमें से कुछ के तो अरिहंत बिम्ब का देखना,..** लो, भगवान के बिम्ब को देखकर भी कोई समकित स्वसन्मुख होकर प्राप्त करे, तब अरिहन्त का बिम्ब था, उसे निमित्तरूप से कहा जाता है। **कुछ के जिनेन्द्र के कल्याणक आदि की महिमा देखना,..** भगवान का जन्म कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, केवल (ज्ञान) कल्याणक (देखकर होता है)। **कुछ के जातिस्मरण,..** किसी को

जातिस्मरण निमित्त होता है। जातिस्मरण इसके लिए होता है, ऐसा नहीं। होता है, उसे किसी को जातिस्मरण हुआ उसमें से, ओहो! यह अविनाशी भगवान ऐसा का ऐसा है। जो वहाँ था, वह यहाँ हूँ। ऐसा स्मरण में स्वभावसन्मुख होकर अनुभव करे तो निमित्त कहलाये। समझ में आया?

कुछ के वेदना का अनुभव,.. नारकी आदि। बहुत वेदना होती है न? उस वेदना में लक्ष्य जाए... आहाहा! अरे! यह वेदना! वेदना... भाव हुआ, ऐसा विचार होने पर स्वभाव सन्मुख हो जाए तो वेदना को निमित्त कहा जाता है। वैसे तो वेदना अनन्त बार हुई, परन्तु फिर भी कुछ हुआ नहीं। रौ-रौ नरक में अनन्त बार गया। परन्तु जब इसका लक्ष्य वेदना पर था, ऐसा उसमें से स्वसन्मुख हुआ, इसलिए जातिस्मरण को बाह्य निमित्त और बाह्य कारण कहने में आता है।

कुछ के धर्म श्रवण.. लो, भगवान की वाणी कान में पड़ने पर कितनों को ऐसा होता है, ओहो! यह मार्ग! वीतराग... भाव। ऐसा भगवान ने जहाँ कहा... एकदम... धर्म श्रवण निमित्त कहने में आता है। वैसे तो अनन्त बार (अरिहन्त के पास गया परन्तु) होवे तो उन्हें निमित्त कहने में आता है। होवे तो उन्हें निमित्त कहना, ऐसा यहाँ से लेना।

मुमुक्षु : न होवे तो कार्य हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कारण-फारण नहीं है। कारण तो यहाँ है। कारणपरमात्मा तो अन्दर है, उस कारण को पकड़ने से कार्य होता है, तब ऐसे बाह्य कारण तो, वहाँ से लक्ष्य छोड़ा था, उसे बाह्य कारण कहने में आता है।

मुमुक्षु : कार्य होवे तो कारण कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ....कारण किसका? किसे प्राप्त करे? कौन प्राप्त करे? कारण तो प्राप्त करे-अन्दर में जाए इतना। ध्रुव की दृष्टि करे, उसने कारण को प्राप्त किया, भगवान आत्मा को प्राप्त किया। इसलिए बाहर के निमित्त के ऊपर से लक्ष्य छूटा था, उसकी बात की जाती है। ....यहाँ से लक्ष्य छूटा था और यहाँ गया तब... अन्तर कारण कर्म का अभाव है। अन्तर में... मूल अभ्यन्तर कारण स्वसन्मुख के परिणाम हैं। ....अन्तर सन्मुख होवे और ....था। यह नरक! यह दुःख? क्या है यह? कहीं नजर डाली पड़े नहीं क्षेत्र में। जाना

कहाँ ? काल की नजर पड़े नहीं। इस वेदना का काल... पहले नरक में दस हजार वर्ष की (आयु में) नारकी के स्थान में (रहे)। यहाँ एक अठारह डिग्री की धूप आवे वहाँ घबराता है। यह तो पहले नरक के नारकी में अनन्त डिग्री का ताप है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सन्मुख होवे, तब उसे निमित्त कहने में आता है। वह कोई बाधक नहीं है। यह बात नहीं यहाँ। अनन्त डिग्री, हों! यहाँ तो अठारह हो और बीस हो, वहाँ चिल्लाने लगता है। लोग मर गये, इज्जत मर गयी, ढोर मर गये। क्या कहते हैं ?....

कहते हैं, उस ओर की... होवे, फिर अन्तर सन्मुख हुआ हो, इसलिए वह बाह्य कारण कहने में आता है। उससे अन्दर में जाता है, ऐसा नहीं है। पहले यह, तब उसको बाह्य कारण कहने में आवे। होवे, उसका अर्थ निमित्त कब कहलाये, ऐसा यहाँ कहना है। होवे, वह दूसरी चीज़ है परन्तु उसे बाह्य कारण कब कहने में आवे ? अन्तर सन्मुख के परिणाम होकर किया, तब उस समय का लक्ष्य उसमें से हुआ था... उपचार करना, वेदना का उपचार करना... यहाँ होवे तो। द्रव्य होवे तो दृष्टि हो। पण्डितजी!

तीन लोक का नाथ चैतन्य भगवान अनन्त-अनन्त स्वभाव की शक्ति का सागर एकरूप है। वह है, कथंचित् हो। अर्थात् उस पर दृष्टि जाए तो समकित हो... है न ? उसमें से पर्याय आती है न। होती है, निमित्त दूसरा होता है, कोई भी हो। अन्दर की दृष्टि करे, तब होता है। तब बाह्य कारण उस समय कौन था, उसका ज्ञान कराया है। ....किया हुआ कार्य द्रव्य के आश्रय से वह कृतज्ञपना है। वह कृतज्ञ है नहीं, ऐसे कारण अनन्त बार हुए। क्यों नहीं हुआ। उससे होता है ? वेदना अनन्त बार हुई, जातिस्मरण अनन्त बार हो गया है, भगवान को अनन्त बार देखा है।

मुमुक्षु : प्रेरक....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेरक अर्थात् क्या ? दोनों, यह तो निमित्त की दशा के प्रकार हैं। दूसरे के कार्य में सहायक हो, उसका कोई प्रकार है नहीं।

मुमुक्षु : सहकारी कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहकारी शब्द नहीं कहा जाता। सहकारी अर्थात् साथ में होवे

तब। सह-कारी अर्थात् साथ में होता है। सहकार, सहकार कहा न? अनन्तानुबन्धी... सहकारी का अर्थ क्या हुआ? मिथ्यात्व की प्रकृति के साथ में अनन्तानुबन्धी... साथ में रहनेवाली, उस काल में साथ में हो, उसका नाम सहकारी। सह का अर्थ है, ऐसा ख्याल है।...वस्तु ऐसी है। उस वस्तु का पुकार उसके घर का है। बाहर का कहाँ है यह? समझ में आया?

....सुनते तो सब हैं, क्यों प्राप्त नहीं हुए? प्राप्त के काल में ऐसा श्रवण होकर विचार आया और उसमें अन्दर में गया, तब श्रवण का निमित्त कहने में आवे। **कुछ के देवों की ऋद्धि का देखना..** देव की ऋद्धि देखे, ठीक। देव की ऋद्धि... स्वयं नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार जा आया है। देव की ऋद्धि। उससे कैसी ऋद्धि, समझे न? वे तो देवलोक में हैं, नीचे उतरते नहीं। उन्हें देख सकते नहीं। देव की ऋद्धि अर्थात् क्या? इसने ऐसे देखा अन्दर... आहाहा! अन्तर में उतरा तब, वह बाह्य कारण कहने में आता है।

इत्यादि बाह्य कारणों द्वारा मिथ्यात्वकर्म का उपशम होने से.. देखो! ऐसे निमित्त से अन्तर के उपादान मिथ्यात्व का उपशम होने से अन्तर में सम्यग्दर्शन के परिणाम शुद्ध उपादान से होने से, ऐसा लेना। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)